अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सीमाएँ

सुर्प्रीम कोर्ट ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनावश्यक शासकीय हस्तक्षेप के संबंध में एक धारा 66ए को असंवैधानिक करार देकर इस सवतंत्रता के पक्ष–विपक्ष में एक नई बहस छेड़ दी है। 2009 से एक नया संशोधन करके सरकार ने फेसबुक पर लिखी हुई अशोभनीय टिप्पणियों को गम्भीर अपराध मानकर टिप्पणीकर्ता को तत्काल गिरफ्तार करने का अधिकार ले लिया था। क्या शोभनीय है और क्या अशोभनीय यह भी बिल्कुल स्पष्ट नही था। स्वाभाविक था कि ऐसे अधिकार का सत्ता और विशेषकर सत्ता से जुड़े उग्रवादी दुरुपयोग करते। यह भी सब जानते है कि आमतौर पर मुसलमानों का बहुमत संघ परिवार का बहुमत तथा ममता बनर्जी का बहुमत स्वाभाविक रुप से ऐसे दूरुपयोग को एक हथियार के रुप में उपयोग करता है और वही हुआ। आजमखान ने,शिव सेना ने,ममता के लोगो ने इसका दुरुपयोग किया और अंत में मजबूर होकर न्यायालय ने हस्तक्षेप किया। धन्यवाद है उन लोगो को जिन्होने इस स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा क्या हो यह तय करना आसान नहीं है। जब कोई राजनैतिक दल सत्ता में होता है तो वह बिल्कुल साफ–साफ अभिव्यक्ति को छोड़कर शेष सबको उलंघन मान लेता है, जबकि जो दल विपक्ष में होता है वह बिल्कुल साफ–साफ सीमाओं को छोड़कर बाकी सब को हस्तक्षेप घोषित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पॉच दस प्रतिशत स्पष्ट उलंघन युक्त तथा पॉच दस प्रतिशत उलंघन मुक्त अभिव्यक्ति को छोड़कर शेष नब्बे प्रतिशत पर निरंतर राजनैतिक विवाद चलता रहता है। इस मामले में किसी भी दल का कोई साफ रेकार्ड नही है चाहे वह कांग्रेस हो, बीजेपी हो या कोई अन्य। यदि तटस्थ रुप से विचार किया जाये तब भी यह सीमा निश्चित करना एक कठिन कार्य है। किन्तु विचारक तो कठिन कार्यो को सहज बनाने के लिए ही अपनी शक्ति लगाता है। इसलिए कार्य कठिन होते हुए भी हमें तो यह कार्य करना ही चाहिए।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संबंध में हम विचार करें तो यह दिखता है कि किसी इकाई के अपने आंतरिक मामलों में अभिव्यक्ति कहीं हस्तक्षेप योग्य नहीं हो सकती। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि वह आत्महत्या कर लेगा तो ऐसा कहना किसी की सीमा का अतिक्रमण नही है और इसलिए इतना कहने मात्र से उसे नहीं रोका जा सकता ।यद्यपि ऐसा कहने वाला व्यक्ति संदेह के घेरे में आता है। यदि कोई व्यक्ति अपने संगठन की सीमाओं की अन्देखी करके अपने विचार व्यक्त करता है, तो संगठन को अधिकार है कि वह उस व्यक्ति को अनुशासन के दायरे में रहने के लिए सहमत करे या अपने संगठन से निकाल दे। कोई व्यक्ति यदि भारत में रहते हुए पाकिस्तान के पक्ष में कुछ बोलता है या पाकिस्तान का झण्डा फहराता है तो उसे वैसा करने से न रोका जा सकता है न ही उसे दण्डित किया जा सकता है, सिर्फ यही किया जा सकता है कि आप उसे अपने संगठन अर्थात् भारत से निकलने को कह दें और न माने तो उसके संवैधानिक अधिकार छीन लें। किन्तु आप को यह अधिकार नहीं कि आप उसे जेल में बंद कर दें। इसी तरह किसी राजनैतिक दल के आंतरिक मामलों में अभिव्यक्ति की सीमायें तोड़ने वाले को अपने राजनैतिक दल से बाहर करने की आप की स्वतंत्रता है। इसी तरह यदि कोई परिवार का सदस्य भी परिवार के अनुशासन से बाहर जाकर विचार करता है तो परिवार को यह अधिकार होना चाहिए कि वह उसे अपने परिवार के संगठन से बाहर कर सके।

किन्तु जब हम किसी अन्य संगठन की स्वतंत्रता के विरुद्ध कुछ बोलते हैं तब ऐसा तय करने में कठिनाई है। इस संबंध में मेरा तो ऐसा विचार है कि किसी अन्य संगठन के विषय में बोलने के पहले दूसरे संगठन को कुछ सोच समझकर बोलना चाहिए किन्तु आजकल इस सोच समझकर काम करने की आदत छूट गई है और इसलिए कुछ सीमायें आपराधिक श्रेणी में शामिल करने की जरुरत पड़ती है। इस प्रक्रिया में यह निश्चित करना अधिक आवश्यक है कि दूसरों के विषय में टिप्पणी करते समय टिप्पणीकर्ता का उद्देश्य अपना पक्ष ही रखना था या दूसरों को अपमानित करना भी। मान लीजिए किसी व्यक्ति ने यह सच बात कह दी कि बजरंग मुनि शराब पीते हैं या चरित्रहीन हैं और यह बात सच भी है। तो प्रश्न उठता है कि क्या मुझे अपमानित करने के उद्देश्य से उसे स्वतंत्रतापूर्वक ऐसा कहने का अधिकार है? मेरे विचार में नहीं होना चाहिए, जब तक यह स्पष्ट नहीं हो जाये कि उसका कहने का आशय मात्र मुझे अपमानित या बदनाम करना नहीं है। इसीलिए 1995 में देश भर के सैंकड़ो विद्धानों ने भारत का प्रस्तावित संविधान बनाते समय रामानुजगंज में बैठकर यह निष्कर्ष निकाला था कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत मामले में अनावश्यक टिप्पणी करना उसकी स्वतंत्रता का अतिक्रमण माना जाये। स्पष्ट है कि व्यक्तिगत मामले का अर्थ उसकी बिल्कुल निजी या आंतरिक जीवनचर्या तक सीमित होता है और उसके बाद भी

आप ठीक नीयत से उसके संबंध में सत्य का उद्घाटन कर सकते हैं। यह ठीक नीयत और बुरी नीयत सिद्ध करना बहुत कठिन कार्य है किन्तु न्यायालय इसी के लिए तो बने हुए है और ऐसे मामले न्यायालय निपटा सकता है। कल्पना करिये कि आप भगवान राम को आदर्श मानते हैं और आप के हृदय में उनके प्रति बहुत श्रद्धा है। आप ऐसी श्रद्धा को अभिव्यक्त भी कर रहे हैं तो कोई व्यक्ति उस अभिव्यक्ति के विरुद्ध राम के विरुद्ध कोई ऐसी भी टिप्पणी भी कर सकता है जो आपके हृदय को ठेस पहुंचावे। मेरे विचार में यह सीमा का अतिक्रमण नहीं है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति राम को चुपचाप भगवान मानता है। किन्तु बाहर नही बोलता और आप अनावश्यक राम की निंदा करते है तो ऐसा कार्य प्रसंगहीन होने से आपकी नीयत पर संदेह पैदा कर देता है। आमतौर पर धर्म के नाम पर बने संगठन, जो आज गिरोह बन चुके है, उनकी भावनाएँ जल्दी भड़कती हैं। ऐसे लोग वास्तव में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हैं। ऐसे संगठनों में कर्मचारी संगठन,किसान संगठन,जातीय संगठन या महिला संगठन भी आते हैं जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हुए दूसरों की स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगाते हैं। इस मामले में वर्तमान समय में पूरी दुनिया में मुस्लिम संगठन तथा महिला संगठन सबसे आगे हैं।क्या मजाल है कि दुनिया का कोई भी व्यक्ति मोहम्मद साहब के संबंध में अथवा महिलाओं के संबंध में कोई ऐसी टिप्पणी कर सके जो उनके संगठन को अच्छी न लगे। ऐसी परिस्थिति में जब संगठित गिरोह संगठन की ताकत पर दूसरों की स्वतंत्रता की सीमायें संकुचित करने का प्रयास करते हैं तो समाज के ही कुछ सक्रिय लोगों का कर्तव्य है कि वे आगे आकर ऐसे संगठन का मुँह बंद करावें और यदि जरुरत हो तो न्यायालय की भी मदद लें। मुस्लिम देशों में ऐसा करना संभव नही है क्योंकि वहॉ के नागरिको को मूल अधिकार प्राप्त नहीं है और वे तनाशाही में जीते हैं, जिसका अर्थ है गुलामी। ऐसे देशों में पहले लोकतंत्र आ जाये तभी कुछ आगे किया जा सकता है। किन्तु भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में जहॉ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व्यक्ति का मूल अधिकार है वहॉ तो अवश्य ही ऐसी पहल करनी चाहिए। मुझे याद है कि जब संघी गुन्ड़ों ने मेधापाटकर को, ब्रहमदेव शर्मा को अथवा प्रशांतभूषण को अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से हटाने के लिए हिंसक आक्रमण किया था तब प्रशांत भूषण,ब्रहमदेव शर्मा और मेधापाटकर के कथन से असहमत होते हुए भी मैने ऐसी हिंसा का खुलकर विरोध किया था। इसी तरह जब शिवसेना ने या आजमखान ने अपनी दादागिरी दिखाई तब भी मैंने इन दोंनो का खुलकर विरोध किया था और अब भी मैं इस मत का हूॅ कि यदि मेरे मत के विरुद्ध भी कोई बात अहिंसक तरीके से बिना किसी बुरी नीयत के कही जाती है तो मैं उसके पक्ष में हूॅ। भले ही मेरे विषय में वह बात गलत ही क्यों न हो।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक दुधारी तलवार है। यदि वह तलवार मजबूत के हाथ में जाती है तो यह तलवार कमजोरों की रक्षा भी कर सकती है और उन्हें डरा भी सकती है। इसलिए रक्षा के नाम पर यह तलवार मजबूतों को देना अच्छी बात नहीं है। मैं इस बात का पक्षधर हूॅ कि यदि कोई विशेष स्थिति न हो तो कानून को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कोई हस्तक्षेप नही करना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में चार प्रकार के विशेष अवसर आते हैं––

(1)विचार विमर्शः–इसमें दोनों पक्षों को अपनी बात तर्क पूर्ण तरीके से पक्ष–विपक्ष में रखने की स्वतंत्रता होती है।

(2)अपनी सहमति से अपनी सीमा की घोषणाः–ऐसी सीमा आमतौर पर किसी संगठन की सदस्यता से ही जुड़ी होती है। यह अवश्य है कि किसी भी व्यक्ति को संगठन से अलग होने की स्वतंत्रता होती है। किन्तु संगठन में रहते हुए उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अपने आप सीमित हो जाती है।

(3)अपने पक्ष में तर्क या उदाहरण देनाः–इसमें भी प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता होती है।

(4)दूसरे पक्ष के विरुद्ध तर्क या उदाहरण देनाः–यही एक मात्र ऐसा विषय है जिसमें सोच समझकर सीमा का अनुकरण करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी सीमा बननी ही चाहिये जिसमें सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम हो अर्थात् ऐसी सीमा स्वयं बनानी चाहिए या समाज को ऐसी सीमा का पालन कराना चाहिए और जब कोई व्यक्ति न स्वयं सीमा का पालन करे न समाज की बात समझे तभी अति होने पर कानून को हस्तक्षेप करना चाहिए। यह प्रश्न आवश्यक है कि यदि किसी भी प्रकार का पक्ष या विपक्ष में बल प्रयोग होता है तो ऐसा बल प्रयोग तो पूरी तरह गलत है ही। चाहे वह किसी पक्ष के द्वारा क्यों न हो। चाहे वह बल प्रयोग न्यायोचित ही क्यों न हो।

क्रिकेट मैच खेल अथवा राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा

भारत और पश्चिम आस्ट्रेलिया के बीच क्रिकेट का सेमी फाईनल मैच सम्पन्न हुआ,जिसमें भारत 95 रनों से हारकर इस प्रतिस्पर्धा से बाहर हो गया। मैने देखा कि भारत और आस्ट्रेलिया के बीच होने वाला यह मैच किसी खेल प्रतियोगिता की अपेक्षा किसी राष्ट्रीय सम्मान की प्रतियोगिता सरीखा बन गया था। खेल स्थान पर देखने वालों की

भीड़ में तीन चौथाई लोग भारतीय थे,तथा एक चौथाई आस्ट्रेलिया वासी। भारत में भी बहुत बड़ी संख्या में लोग इस प्रतियोगिता को इस तरह देख रहे थे,जैसे कि दो देशों के बीच युद्ध का कोई निर्णायक परिणाम आने वाला हो। कई शहरों में लोग भारत की जीत के लिए यज्ञ करने तक का प्रयास कर रहे थे। नहीं कह सकता कि यह उनका ढोंग था या दिखावा या भावनात्मक उबाल। बहुत लोग मंदिरों में भारत की जीत के लिए प्रार्थनाएँ कर रहे थे। ऐसे लोगों की संख्या भी बहुत ज्यादा थी, जो भारत की जीत के प्रति उम्मीद भरी निगाहों से देख रहे थे। स्पष्ट है कि जो स्थिति भारत के दशर्कों की थी उसका एक चौथाई भी उबाल आस्ट्रेलिया के दर्शकों में नही था। मैंने स्वयं देखा कि जब भारत के हारने के प्राथमिक लक्षण दिखने लगे तो सभी टी बी वालो ने इसको बताना बंद कर दिया। यहॉ तक कि जब महेन्द्र सिंह धोनी की घर पर सुरक्षा बढ़ाई गयी, तब भी किसी टी बी वाले ने यह नहीं बताया कि भारत का स्कोर क्या है और कितने गेंद बाकी है। मैं जानता हूँ कि जैसी स्थिति भारत में है वैसी ही स्थिति पाकिस्तान में भी है। मैच हारने की घोषणा होते ही भारत में कई लोगों ने अपने टी बी तोड़ दिये, तो कईयो ने रात का खाना नही खाया। खिलाड़ियों की आलोचना तो आमतौर पर हुई। यदि यह मैच पाकिस्तान से हुआ होता और भारत उसमें हार जाता तो भारतीय खिलाड़ियों की और आफत होती। दूसरी ओर भारत और पाकिस्तान के बीच होने वाले विश्व स्तरीय मैच में यदि पाकिस्तान भारत से हार जाता,तो पाकिस्तान में भारत की अपेक्षा भी ज्यादा उबाल आता। खिलाड़ियों के लिए तो यह बात विशेष महत्व नही रखती क्योंकि जब जीतने पर खिलाड़ी सिर पर चढ़ जाने तक का अधिकार रखते है तो हारने पर पाताल तक गिरा देना कोई विशेष महत्व की बात नहीं है। हम देख चुके हैं कि तीन चार दिन पहले ही जब पाकिस्तान सेमी फाईनल से बाहर हुआ तो वहॉ भारत की अपेक्षा खिलाड़ियों का ज्यादा अपमान हुआ था।

मैं यह नही समझ सका कि दुनिया में सिर्फ दक्षिण एशिया के देशों में खेलो को राष्ट्रीय भावना से जोड़कर देखने का रिवाज अन्य देशों से कई गुना ज्यादा है। खेल –खेल होते है, उनमें हार जीत होती है। उस हार जीत का राष्ट्रीय अस्तित्व में मामूली ही प्रभाव पड़ता है। फिर भी लोग इसलिए उद्वेलित होते हैं क्योंकि दक्षिण एशिया के देश और उनमें भी भारत बहुत ज्यादा भावना प्रधान देश है। मीडिया वाले विशेषकर टी बी वाले वह तरीका जानते है, जिससे आम लोगों की भावनाओं को उभारकर किसी निश्चित दिशा में मोड दिया जाए और उसका लाभ उठाया जाये। यह स्थिति सिर्फ खेलों के लिए ही नहीं है,अन्य कई मामलों में भी भावनाओं को उभारने का यह प्रयत्न चलता रहता है। पश्चिम के देशों में दक्षिण एशिया के देशों की अपेक्षा भावनाओं का दुरुपयोग करने में अधिक कठिनाई होती है। भारत के राजनैतिक दल या धर्मगुरु भी ऐसा ही प्रयत्न करते रहते है जिससे भारत में भावनाओं का उभार अधिक तेज गति से होता रहे। यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं है। विशेषकर खेलों के मामले में तो ऐसी प्रवृत्ति को अवश्य ही कमजोर करना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि सब मिलकर इस बात पर गम्भीरता से विचार करें कि खेलों की प्रतिस्पर्धा में राष्ट्रीय भावना के प्रवेश करने की कोई सीमा हो, न कि उसे राष्ट्रीय महत्व के साथ जोड़ दिया जाये। हमारे क्रिकेट खिलाड़ी भी इस तरह का प्रदर्शन करते हैं जिससे राष्ट्रीय भावनाओं का उभार हो और खिलाड़ी उस उभार का अधिक से अधिक आार्थिक शोषण कर सकें। यहॉ तक कि भारत की टीम पहले दिन से पहली प्रतियोगिता से सात बार जीतने के बाद सेमी फाईनल में हारे। मुझे याद है कि भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इन खिलाड़ियों को जीत के बाद इस तरह धन्यवाद दिया जैसे कि इन लोगों ने बहुत बड़ा राष्ट्रीय सम्मान का कार्य किया हो। यदि ठीक से देखा जाये तो आन्तरिक स्थिति ऐसी है कि इनमें से अधिकांश खिलाड़ी इसे शुद्ध अपना व्यापार मानते है। शायद ही कोई खिलाड़ी हो जो अपने खेल में व्यापार को महत्व न देकर राष्ट्रीय सम्मान को ज्यादा महत्व देता हो। अभी–अभी किसी खेल के खिलाड़ियों की व्यवस्था में अल्पकाल के लिए अव्यवस्था हो गई थी,तो खिलाड़ियों ने आसमान सर पर उठा लिया था। मैंने तो कई बार यह भी देखा है कि अनेक खिलाड़ी अपने पैसों के लिए किस तरह किसी सीमा से कई गुना नीचे उतर कर व्यवहार करते है। मैं समझता हूँ कि इन सब मामलों में गम्भीरता से एक बहस छिड़नी चाहिए।

जिसकी लाठी उसकी भैंस

यह कहावत मैने सुनी तो कई बार है किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव करने के भी कुछ अवसरों में से तीन महत्वपूर्ण घटनाएँ मैने स्वयं देखी। सन्1977 में जब जनता पार्टी शासन में थी, तथा जनसंघ समेत विपक्ष के अनेक दलों को मिलाकर जनता पार्टी बनी थी, तब जनता पार्टी का संगठनात्मक चुनाव हो रहा था। इसी क्रम में सरगुजा जिले का भी चुनाव हो रहा था। विदित हो कि 1977 का सरगुजा जिला आज विभाजित होकर चार जिलों में बंट चुका है। उस समय के संयुक्त सरगुजा जिले का चुनाव अम्बिकापुर में हो रहा था। उस समय के मध्यप्रदेश के गृहमंत्री प्रभुनारायण

त्रिपाठी तथा केन्द्रीय श्रम राज्य मंत्री लरंगसाय भी बैठक में उपस्थित थे। पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व के निर्देशानुसार बैकुंठपुर के विधायक ज्वालाप्रसाद उपाध्याय जो समाजवादी पृष्ठभूमि के थे,वे चुनाव अधिकारी थे। चुनावी बैठक में बड़ी संख्या में आम कार्यकर्ता उपस्थित थे जिसमें कुछ मतदान का अधिकार रखते थे और कुछ ऐसे ही आ गये थे। बैठक में कुल मिलाकर जनसंघ की पृष्ठभूमि वालों की संख्या करीब 90 प्रतिशत थी। बैठक में ज्यों ही चुनाव अधिकारी ज्वालाप्रसाद जी आये और कुछ बोलना शुरु किये,त्यों ही जनसंघ के एक लम्बे तगड़े कार्यकर्ता बालकिशन सिंह ने ज्वालाप्रसाद जी का कागजों का बैग छीनकर इस तरह दूर फेंका कि उसे बलबीर सिंह बाबरा जी ने पकड़ लिया और उन्होने इस तरह दूर फेंका कि वह झोला उस हॉल से बाहर चला गया और बाहर से कहॉ गया यह आज तक मालूम नहीं। एक कार्यकर्ता ने मेरा नाम जिला अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया और तुरन्त दूसरे ने समर्थन किया और मैने देखा कि तुरन्त ही मेरी जय जय कार होने लगी अर्थात् मैं जिला जनता पार्टी का अध्यक्ष घोषित हो गया। न कोई प्रस्ताव पारित हुआ न कही कोई फार्म भरा गया,न कोई जॉच पड़ताल हुई,न ही कही चुनाव अधिकारी की कोई भूमिका रही,और मैं जिला अध्यक्ष बन गया। मैं उस दिन से सन् 84 तक सरगुजा जिले का अध्यक्ष रहा जिसमें वह कार्यकाल भी शामिल है जब जनता पार्टी टूटकर भाजपा बनी। यह अवश्य है कि जनता पार्टी और भाजपा में मेरा कार्यकाल अब भी याद किया जाता है।

आचार्य कुल सर्वोदय विचारों की संस्था है जिसे विनोबा जी ने प्रारंभ किया था। सन् 2004 के आसपास आचार्य कुल के नये अध्यक्ष का चुनाव होना था। आगरा में चुनाव के लिए बैठक हुई जिसमे मै भी शामिल था। चुनाव अधिकारी हैदराबाद के व्योवृद्ध गॉधीवादी को वैद्यनाथन जी थे। उस समय तक बाल भाई अध्यक्ष थे और ऐसा लग रहा था कि वही सर्वसम्मत अध्यक्ष बन जायेंगे। किन्तु चुनाव के दिन प्रातः से ही बिहार और कुछ उत्तर प्रदेश के लोग चर्चा कर रहे थे कि शरद साधक जी को बनाना चाहिए। कारण पूछने पर पता चला कि भारत के राष्ट्रपति ने बाल भाई को सवा करोड़ रुपया दिया है जो आचार्य कुल के खाते में आया और बाल भाई समय सीमा में वह रुपया खर्च नहीं कर पाये और पचहत्तर लाख रुपये अभी भी बैंक में है। जब चुनाव प्रक्रिया शुरु हुई तो चुनाव अधिकारी ने खड़े होकर अब चुनाव इतना ही शब्द बोला था कि बिहार के एक साथी ने चुनाव अधिकारी का वाक्य पूरा होने के पहले ही साधक जी का नाम प्रस्तावित कर दिया और एक दूसरे साथी ने समर्थन कर दिया और सब लोगो ने जय जय कार करके उनको अध्यक्ष घोषित कर दिया। मै यह स्पष्ट कर दूं कि आचार्य कुल मे चुनाव नही होता बल्कि मनाव होता है। जिसका अर्थ होता है कि जिस व्यक्ति का नाम पहले आता है उसे सब लोग मिलकर तैयार करते है। मध्यप्रदेश के गुरुशरण जी ने आपत्ति की। लेकिन कुछ नहीं हो पाया और साधक जी भीड़तंत्र के द्वारा अध्यक्ष चुन लिये गये। यह अवश्य है कि साधक जी ने 75 लाख रुपया सरकार को वापस करके कुछ साथियों को निराश किया । लेकिन बिना किसी प्रक्रिया के ही बिना मतदाताओं से पूछे ही वे उसी तरह अध्यक्ष बन गये जिस तरह मैं बना था।

ये दोनो प्रसंग आज इसलिये याद आये कि कल अरविंद केजरीवाल की आम आदमी पार्टी और योगेन्द्र,प्रशांत की आम आदमी पार्टी के बीच ''जिसकी लाठी उसकी भैस'' के आधार पर निर्णय हुआ। न कहीं नैतिकता थी,न कहीं कानून था। यदि था तो सिर्फ हाथ में लाठी और जिसके हाथ में सत्ता लाठी थी, भैस ले गया। मैं मानता हूँ कि यह अवश्यम्भावी था क्योंकि आज तक दुनिया में ऐसा कोई अजूबा नहीं हुआ है जहॉ सत्ता संघर्ष और व्यवस्था की स्थापना के प्रयत्न मिलकर चल सकें। जब तक भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था तब तक गॉधी की बात सब मानते थे। जब तक आपातकाल था तब तक जयप्रकाश नारायण की बात सब मानते थे। जब तक अन्ना हजारे का प्रभाव था तब तक अन्ना जी की बात भी सब मानते थे। बाद मे तीनो का क्या हुआ यह सब जानते है। स्पष्ट है कि इतिहास में हमेशा ऐसा ही होता आया है कि यदि सत्ता की इच्छा रखने वाले लोग और व्यवस्था परिवर्तन की इच्छा रखने वाले लोग एक साथ काम करेंगे और वह काम भी व्यवस्था परिवर्तन की स्पष्ट योजना के अभाव मे सत्ता के साथ जुड़ी होगी तो ऐसा होगा ही। जिस समय अरविंद केजरीवाल व्यवस्था परिवर्तन का लक्ष्य छोड़कर राजनैतिक व्यवस्था में सुशासन की बात कर रहें थे अर्थात् सस्ता पानी और सस्ती बिजली की बात कर रहें थे तभी योगेन्द्र प्रशान्त की जोड़ी को सर्तक हो जाना चाहिए था। मैं जानता हूँ कि जब दिल्ली के चुनाव शुरु हुए तब ये लोग सतर्क हुए और तब तक अरविंद केजरीवाल पूरी तरह मजबूत हो चुके थे। अब कल के परिणाम अरविंद केजरीवाल को अन्य राजनैतिक दलों की तरह सत्ता संघर्ष मे शामिल होने की एक पक्षीय पहचान दे चुके है। जिसका अर्थ है कि अब भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में स्पष्ट हो गया है कि अरविंद केजरीवाल भी नरेन्द्र मोदी सोनिया गॉधी,मुलायम,मायावती,जयललिता,करुणानिधि के परिवार में शामिल हो चुके हैं। इसका अर्थ हुआ कि भैस

तो अरविंद अपने साथ ले गये है। अब योगेन्द्र प्रशांत उसके लिए कोई भी प्रयत्न क्यों न करते रहे क्योकि जहां भैस होगी वही दूध होगा और जहां दूध होगा वही भीड लगेगी। यह स्वाभाविक परिणाम होता है।

समीक्षा

महिला सशक्तिकरण की

मैंने महिला सशक्तिकरण तथा महिला आरक्षण विषय पर पिछले ज्ञानतत्व में एक कॉलम लिखा था,जो महिलाओं को पुलिस भर्ती में प्राथमिकता दिये जाने के विरुद्ध था। कई पाठकों के प्रश्न आये, जिसमें भानुप्रतापपुर छ0ग0 के दीप आहुजा तथा रामवीर श्रेष्ठ दिल्ली के महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हैं।

(1)कई लोग चाहते हैं कि सरकार परिवार नियोजन से सम्बंधित कोई सख्त कानून बनाए, जैसे कि एक परिवार में एक बच्चा । आपको ये सही लगता हैं?

उत्तरः—मेरे विचार में परिवार नियोजन के लिए कोई सख्त कानून बनाना उचित नहीं है। ज्यों—ज्यों भारत में आर्थिक सम्पन्नता बढ़ रही है, त्यों—त्यों आबादी वृद्धि की दर घटती जा रही है। यदि अधिक कड़े कानून बनाकर आबादी वृद्धि को रोका गया तो सम्भव है कि कुछ ही वर्षों में अनेक पश्चिम के देशों की तरह आबादी वृद्धि को प्रोत्साहन करने की आवश्यकता पड़ेगी। फिर भी मैं यह मानता हूँ कि यदि मुसलमान लोग स्वेच्छा से आबादी वृद्धि को एक हथियार के रुप में मानना बंद न करें तो उन्हें सबक सिखाने के लिए एक तीर से दो शिकार किये जा सकते हैं।

(2)हिन्दू, नारी को देवी के रुप में पूजने के दावे करता है और अपनी ही बहुओ को दहेज कम लाने की वजह से कम खाना,अत्याचार और कत्ल भी करता है?

उत्तरः—महिलाओं के विषय में हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विभिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं। जब समाज में महिलाओं को समान अधिकार से वंचित करके दूसरे दर्जे का सदस्य माना जाने लगा, तब ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते'' जैसा सम्मानजनक विचार फैलाना आवश्यक हो गया। दूसरी ओर जब महिलाएँ समाज में अधिक सशक्त होने लगी तब सम्भव है कि ढोल ,गंवार,शूद्र,पशु, नारी,का विचार फैला हो। ये दोनों ही विचार परिस्थितिजन्य हैं सर्वकालिक नहीं। व्यक्ति का आचरण किसी वर्ग के साथ जोड़कर देखना गलत परम्परा है। जब नारी एक मॉ होती है तब वह पूज्य होती है और जब बेटी होती है तब वह संरक्षिता होती है, अमानत होती है, और जब पत्नी होती है तब सहभागी । मै स्पष्ट कर दूं कि पत्नी कभी सहयोगी नही होती बल्कि सहभागी होती है। उसे सहयोगी कहना गलत है। समाज में प्राचीन समय में भी जहॉ सीता,कुन्ती जैसी आदर्श महिलाएँ हुई हैं तो दूसरी ओर कैकई और सुर्पनखा जैसी महिलाओं के भी स्पष्ट उदाहरण मौजूद हैं। किसे देवी माना जाये और किसे दण्ड का अधिकारी माना जाये यह उनके आचरण से ही निर्धारित हो सकता है, जन्म से नहीं।

आपने दहेज के दुष्प्रभाव की बात की जो अधिकांश सुनी सुनाई बातें हैं। सच्चाई यह है कि अनेक लड़के, लड़कियों के अभाव में कुंवारे रह गये। अब तो न्यायालय भी मानने लगा है कि दहेज के नाम का दुरूपयोग करके लडकियां ससुराल पक्ष पर बहुत अत्याचार कर रही है। छ0ग0 में तो बहुत से बाहर के लोग बहुत पैसा दे दे कर लड़कियों से विवाह कर रहें है और अधिकांश ऐसी लड़कियॉ सुखी है। न सभी पुरुष गलत होते हैं न सभी महिलाएँ।जहॉ आप दहेज की बात कर रहें है वहॉ पीड़ित और पीड़क दोनों ही परिवारों में न सिर्फ पुरुष होते है न सिर्फ महिलाएँ। यह दहेज का हल्ला बिल्कुल गलत है।

(3)दिल्ली निर्भया बलात्कार के बाद लडकियों के पहनावे पर बहुत बहस हो रही है। कुछ लोग कहते हैं कि लडकियॉ कुछ भी पहने इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जो महिलाएँ सादा पहनती है उनके साथ भी ऐसी घटनाएँ होती है। ऐसा कहते हुए मैंने रेडियो पर महिला आयोग की प्रमुख ममता शर्मा को सुना?

उत्तरः—निर्भया बलात्कार के बाद लडकियों के पहनावे पर बहुत बहस हो रही है यह सच है। मेरे विचार में महिलाओं को या पुरुषों को किसी भी प्रकार के वस्त्र पहनने पर कोई नियम नहीं बनना चाहिए क्योंकि वह विशुद्ध परिवार का आन्तरिक मामला है। कोई परिवार अपनी लड़की को व्यावसायिक दृष्टि से अथवा अन्य कारण वश बाहरी लड़कों को आकर्षित करने के लिए उस तरह की वेशभूषा पहनने की छूट दे तो समाज कौन होता है उसमें रोक टोक लगाने वाला। वेशभूषा का अंतिम अधिकार या तो व्यक्ति के स्वयं का है या परिवार उसे रोक सकता है। इसी तरह अन्य संगठन भी अपने संगठन में शामिल करने के लिए वेशभूषा संबंधी नियम बना सकते है। कोई स्कूल जो सरकारी नहीं है वह अपने बच्चों के लिए नियम बना सकते हैं। वेशभूषा पर आपत्ति करने वाले शिथिल इन्द्रीय

बुढ़े अथवा चरित्र को अपनी विशेष पूँजी मानने का घमण्ड करने वाले ही वेशभूषा संबंधी आलोचना करते रहते हैं। महिला आयोग की अध्यक्ष यदि महिलाओं के पक्ष में बोलती हैं तो यह उनकी राजनैतिक मजबूरी है क्योंकि इस तरह का बोलने के लिए ही उनको यह जिम्मेदारी दी गई हैं । यदि वे ऐसा न बोलें तो उनका राजनैतिक जीवन खतरे में पड़ जायेगा। यह भी आवश्यक नहीं है कि भारत की सभी महिलाओं के राजनैतिक पद उनकी व्यक्तिगत योग्यता अथवा सामाजिक प्रतिवद्धता को आधार बनाकर ही भरे जाते हैं। मैंने तो यहॉ तक सुना है कि कुछ महिलाओं के राजनैतिक पद योग्यता के अथवा सामाजिक प्रतिवद्धता को किनारे करके सिर्फ महिला होने की उपयोगिता के आधार पर भर दिये जाते हैं। मैंने तो एक राज्यपाल तथा एक मुख्यमंत्री के विषय में भी सुना है कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत उपयोग को आधार बनाकर कई महिलाओं को स्थापित कर दिया। हमें पद को न देखकर उनकी अन्य योग्यताओं पर समीक्षा करनी चाहिए।

(4)कई लोग परिवार के ऊपर दोषारोपण कर रहे है। कहते हैं परिवार लड़को को अच्छे संस्कार नहीं दे रहा इस वजह से ऐसे अपराध होते है। इसके लिए परिवार भी जिम्मेदार है,समाज को भी ये जिम्मेदार मानते है।,आप अपने विचार बताएं?

उत्तरः— यह बात सही है कि लगातार परिवारों के बच्चों के संस्कार कमजोर होते जा रहें है। समाज भी उन्हें नही रोक पा रहा,किन्तु ऐसे पतन का दोषी न परिवार है न ही समाज। जब आप परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था को कमजोर करके सारे अधिकार संवैधानिक व्यवस्था के सुपुर्द कर रहें है तो आप अपना दोष परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था को नहीं दे सकते। सच बात यह है कि चरित्र पतन के लिए सिर्फ और सिर्फ संवैधानिक राजनैतिक व्यवस्था को ही दोष दिया जा सकता है।

(5)क्या महिलाओं के साथ समाज में भेदभाव नहीं होता है?

उत्तरः—मैं स्पष्ट हूँ कि समाज में महिलाओं के साथ पुरुषों की अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार होता है। आज भी यह स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवहार में महिलाओं को विशेष सम्मान प्राप्त है। परिवार में जो भेद भाव दिखता है वह पुरुष प्रधान व्यवस्था का परिणाम है। यदि पुरुष प्रधान व्यवस्था की जगह परिवार को लोकतांत्रिक तरीके से मुखियॉ चुनने की अनिवार्य व्यवस्था दे दी जाये तो यह भेदभाव भी खत्म हो सकता है और अधिकांश परिवारों में लोकतांत्रिक तरीके से भी पुरुष ही मुखियॉ चुने जायेंगे। इसी तरह सम्पत्ति के मामले में भी परिवारों के अन्दर झगड़ा लगाने वाले भीमराव अम्बेडकर और नेहरु की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण रही है। सम्पत्ति के मामले में इन लोगों ने जान बूझकर परिवारों को विभाजित करने वाली नीतियॉ बनायीं और भविष्य में इन्हीं के वंशजो ने आज तक उन नीतियों को आगे बढ़ाया। आज भारत का लोकतंत्र इस परिवार तोड़क अर्थनीति को लगातार आगे बढ़ा रहा है। महिला को किस परिस्थिति में परिवार में हिस्सा मिलेगा यह बात बेचारी महिला क्या जाने? यह तो स्वयं कानून बनाने वाले भी नही जानते न ही पंड़ित नेहरु और अम्बेडकर जानते थे और न ही नरेन्द्र मोदी या प्रणव मुखर्जी। यदि नेताओं की नीयत ठीक होती तो वे परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति को सामूहिक घोषित कर देते जिसमें परिवार से अलग होते समय वह सदस्य ,सदस्य संख्या के आधार पर हिस्सा ले पाता।

(6)क्या पुरुष किसी संगठन का सदस्य बनते समय अपने परिवार से पूछते है?

उत्तरः— यह सही है कि पुरुष सदस्य किसी संगठन का सदस्य बनते समय महिलाओं से नही पूछते क्योंकि वे आमतौर पर परिवार के संचालक होते हैं। किन्तु परिवार के नाबालिग लड़के लड़कियॉ परिवार से पूछते हैं। यदि पुरुष प्रधान व्यवस्था की जगह लोकतांत्रिक तरीका आ जाये तो यह आरोप स्वतः खत्म हो सकता है।

(7)यदि परिवार,गॉव, प्रदेश देश व्यवस्था के अंग बन जावें तो जाति, धर्म रहेंगे या समाप्त करना होगा?

उत्तरः— जाति,धर्म की व्यवस्था समाज को तोडने वाली तथा अव्यवस्था फैलाने वाली है। इसे समाप्त होना ही चाहिये। सम्भव है कि किन्हीं परिस्थितियों में कुछ प्रयोग के आधार पर अथवा कुरीति के आधार पर यह बुराई शुरु हो गई हो लेकिन अब इस बुराई को कालबाह्य मानकर समाप्त कर ही देना चाहिए। मैं देख रहा हूँ कि कट्टरपंथी,मुसलमान या संघ परिवार के लोग अपना स्वार्थ देखकर धर्म की बुराई को समाप्त नहीं होने दे रहे तो राजनीति को पेशा बनाने वाले जाति की व्यवस्था को पुनः जीवित करना चाहते हैं। ये आदिवासी,अछूत,शूद्र,हरिजन,आदि जातीय समूह बनाकर अपनी राजनैतिक रोटी सेकने वालों से पिंड छुडाने के लिए समान नागरिक संहिता एक रामबाण उपचार है।

(8)लडकियॉ परिवार में परिवार की अमानत कैसे है जबकि लड़के परिवार का भाग है?

उत्तरः— परिवार व्यवस्था में यह अनिवार्य है कि स्त्री और पुरुष का शारीरिक संबंध किसी भी रुप में सपिंड न हो अर्थात् पिता की कुछ पीढ़ियॉ तथा माता की कुछ पीढ़ियॉ छोड़कर ही हो। यह व्यवस्था सिर्फ धारणा ही नहीं है बल्कि पूरी दुनिया में इसे वैज्ञानिक मान्यता भी प्राप्त है। इसका अर्थ है कि या तो किसी परिवार की लड़की दूसरे परिवार में जाकर वहॉ किसी की पत्नी के रुप में रहे अथवा लड़का लड़की के यहॉ जाकर वहॉ वह लड़की को पत्नी मानकर रखे। प्राचीन समय में अनुलोम विवाह होते थे जिसमें निम्न वर्ण की लड़की उच्च वर्ण के परिवार में जाकर रहती थी। दूसरी ओर निम्न वर्ण का लड़का निम्न वर्ण की लड़की के साथ आमतौर पर घर जमाई के रुप में रहता था। इस तरह उच्च वर्ण में सामान्यतया पुरुष प्रधान व्यवस्था थी और निम्न वर्ण में महिला प्रधान। यद्पि यह व्यवस्था अब टूट रही है और आमतौर पर सभी वर्णों में पुरुष प्रधान परिवार व्यवस्था लागू हो रही है। फिर भी कुछ आदिवासियों में या कुछ पिछड़े क्षेत्रों में अब भी इसके अवशेष देखे जा सकते हैं। यदि सामान्यतया लड़की का दूसरे परिवार में जाकर रहना निश्चित है तो वह लड़की अन्य परिवार में जाने तक अमानत ही मानी जायेगी। यही कारण है कि घर में लड़का पैदा होने पर जितनी प्रसन्नता होती है उतनी लड़की पैदा होने पर नहीं होती है।इस तरह लड़का तो परिवार का हिस्सा माना जाता है और लड़की अमानत।

(9)यदि पूरी दुनिया में महिला सशक्तिकरण एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, तो भारत में अमान्य क्यों?

उत्तरः— पूरी दुनिया में यदि कोई कुरीति प्रचलित है तो आवश्यक नही कि हम भी ऑख मूँदकर उसे अंगीकार कर लें। पश्चिम के देशों में परिवार व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग न मानकर उसे काम चलाऊ व्यवस्था का भाग माना जाता है जबकि भारत में इसके विपरीत है। परिवार सशक्तिकरण समाज सशक्तिकरण की तुलना में पुरुष या महिला सशक्तिकरण बिल्कुल ही विरोधी कार्य है। यदि पुरुष या महिला सशक्तिकरण होगा तो व्यक्ति अधिक मजबूत होगा और परिवार तथा समाज कमजोर। पश्चिम को परिवार अथवा समाज की कोई चिंता नही है किन्तु भारत को तो है इसलिए भारत में परिवार व्यवस्था,समाज व्यवस्था को कमजोर करके व्यक्ति की व्यवस्था को मजबूत करना घातक होगा।

(10)परिवार एक प्राकृतिक इकाई है अथवा संगठन अथवा व्यवस्था की इकाई?

उत्तरः— मेरे मित्र रोशनलाल अग्रवाल की मान्यता है कि परिवार एक प्राकृतिक इकाई है। संगठन अथवा व्यवस्था की नहीं। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। रोशन लाल जी जो कुछ भी कह रहे है वह वर्तमान को देखते हुए कह रहे हैं। लेकिन मेरा यह मानना है कि आदर्श स्थिति में परिवार को एक संगठन तथा समाज की इकाई के रुप में माना जाना चाहिए। यदि कोई इकाई प्राकृतिक है तो उस इकाई में बिना प्राकृतिक तरीके के किसी नये सदस्य का शामिल होना असंभव होगा। अब तक जो कानून हैं वे इसी तरह के हैं जिसमें परिवार के अन्दर पत्नी को छोड़कर अन्य सदस्य जन्म के आधार पर ही जुड़ सकते हैं। मेरे विचार में अब इस परिभाषा को बदल कर परिवार की नई परिभाषा को मान्यता देनी चाहिए जो इस प्रकार है। संयुक्त सम्पत्ति तथा संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने के लिए सहमत व्यक्तियों का समूह। मैं तो इस मत का हूँ कि परिवार का मुखियॉ भी सब की सहमति से गुप्त मतदान द्वारा होना चाहिए। परिवार चलाने के अन्य तरीके परिवार तय कर सकता है।

(11)आप महिला आरक्षण का विरोध करने वाले अकेले पुरुष हैं। क्या आपने गम्भीरता से सोच लिया है?

उत्तरः— मैं पूरी गम्भीरता से सोच लिया हूँ और वह भी पूरे 30—40 वर्षों से यह निष्कर्ष निकाला हूँ कि महिला सशक्तिकरण की आवाज परिवार व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था के लिए घातक है। न महिला सशक्तिकरण होना चाहिए न ही पुरुष सशक्तिकरण। अब तक पुरुष सशक्तिकरण है। कुछ थोड़ी सी महिलायें ही सशक्त दिखती है, जिसमें अनेक या तो अपना परिवार तोड़कर आयी है अथवा वे पुरुषों के समान अधिक स्वतंत्रता चाहती है अथवा यह भी संभव है कि वे महिला सशक्तिकरण का नारा लगाकर अपने परिवार की सहायता कर रही हों। तीनों में से चाहे जो भी सच्चाई हो लेकिन यह मॉग परिवार और समाज को नुकसान करने वाली है। सरकारों को इस मामले में सतर्क होना चाहिए था किन्तु राजनीति से जुड़े हर व्यक्ति को इसमें सुविधा महसूस हो रही है। मैं भले ही अकेला हूँ किन्तु मैं अकेला होते हुए भी सत्य से इन्कार नही कर सकता। महिला सशक्तिकरण का नारा लगाने वाले लोगो का षड़यंत्र विफल कर देना चाहिए। मैं मानता हूँ कि किसी भी प्रकार का आरक्षण घातक है। सब प्रकार के आरक्षण जो अब तक लागू नहीं हो सके है उसका पुरजोर विरोध होना चाहिए।

(12)आप बेटी बचाओं आन्दोलन को भी गलत मान रहें है जबकि पूरा देश इसे एक आवश्यकता मान रहा है?

उत्तरः— यह बात सही है कि मैं बेटा या बेटी को पृथक –पृथक नहीं मानता। या तो कोई अकेला आदमी एक व्यक्ति है अथवा एक परिवार। यदि कोई महिला या पुरुष विल्कुल अकेले है तो मैं उन्हें व्यक्ति के रुप में समान अधिकार देने का पक्षधर हूॅ चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। यदि कोई स्त्री या पुरुष परिवार के सदस्य हैं तो परिवार बैठकर उनकी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार उनके अधिकार तथा कर्तव्य तय करेगा। मेरे विचार में वर्तमान समय में महिलाओं की संख्या पुरुषों की अपेक्षा करीब 3–4 प्रतिशत तक कम हुई है। महिलाओं की घटती आबादी अपने आप महिलाओं और पुरुषों के बीच की दूरी घटा और बढ़ा रही है। यहॉ तक कि जाति प्रथा तथा साम्प्रदायिक मामलों में भी बहुत कमी आ रही है। अलग–अलग जातियों में विवाह हो रहे हैं और उसका कारण है महिलाओं की घटती संख्या। महिलाओं की घटती संख्या आबादी वृद्धि नियंत्रण में भी सहायक है। यह सच है कि यदि कन्या भ्रूण हत्या को रोका नही गया तो महिलाओं और पुरुषों का अनुपात बढ़कर पॉच तक हो सकता है। यदि यह अनुपात पॉच हो गया तो अपने आप अनेक समस्याओं का समाधान हो जायेगा। अनेक घरों में पुरुष प्रधान की व्यवस्था अपने आप टूटने लगेगी। अपने आप महिला सशक्तिकरण हो जायेगा।अपने आप दहेज या पर्दा प्रथा खतम हो जायेगी। मैं जानता हूॅ कि महिलाओं की कमी को देखते हुए पूरा पुरुष समाज चिंतित हो गया है कि बहू कहॉ से लायेंगे। मैं चाहता हूॅ कि पुरुषों ने जिस तरह हजारों वर्षों तक महिलाओं को परिवारों में सम्पत्ति में या व्यवस्था में अधिकारों से वंचित रखा उन्हें कुछ वर्षों तक और सबक सीखना चाहिए। नरेन्द्र मोदी अथवा शिवराज सिंह चौहान ऐसी ही पुरुष प्रधान समस्याओं की अधिक चिंता कर रहे हैं। यदि रोकना ही है तो पूरी भ्रूण हत्या को रोका जाये अथवा पूरी समस्या से सरकार बाहर निकलकर समाज के जिम्मे में छोड़ दिया जाये।

(13)आप वैश्यावृत्ति का समर्थन कर रहे हैं। क्यों?

उत्तरः— मैं वैश्यावृत्ति का समर्थक भी नही हूॅ और उसे रोकने के लिए सरकारी हस्तक्षेप के भी विरुद्ध हूॅ। जो सरकार बलात्कार नहीं रोक पा रही है, उसे वैश्यावृत्ति रोकने में अपनी शक्ति नहीं गंवानी चाहिए।वैश्यावृत्ति जितनी समस्याओं का कारण है उससे ज्यादा समस्याओं का समाधान भी है।कोई महिला अपनी पेट की भूख अथवा अन्य किसी शारिरिक भूख के कारण वैश्यावृत्ति करती है तो यह समाज और सरकार उसे ऐसा पतित कार्य करने में भी हस्तक्षेप करती है। होना तो यह चाहिए था कि समाज उसकी ऐसी अवयश्कता की पूर्ति में कुछ सहायता करता किन्तु सहायता की बात तो दूर उल्टा वह उससे या तो टैक्स वसूलता है अथवा नियंत्रण करता है। ऐसी महिला कोई चोरी डकैती जैसा कोई अपराध तो नहीं कर रही है। मेरे विचार में वैश्यावृत्ति एक अनैतिक असामाजिक कार्य है। उसे सहमति के आधार पर अथवा सहायता के आधार पर निरुत्साहित किया जा सकता है। इससे अधिक नहीं क्योंकि वह न कोई अपराध है न ही समाज विरोधी कार्य। वैश्यावृत्ति पर अधिक कठोर नियंत्रण बलात्कार वृद्धि में सहायक होते हैं। मैं तो इस विचार का हूॅ कि विवाह की उम्र बढ़ाना भी ना समझी भरा कदम है। मेरे विचार में विवाह की उम्र तय करना सरकार का कार्य नहीं है और यदि सरकार आवश्यक ही समझे तो बारह अथवा चौदह वर्ष के ऊपर कोई प्रतिबंध नही होना चाहिए।

(14)यदि परिवार से निकलने निकालने की छूट होगी तो जो भी थोड़े मोड़े परिवार बचे है वे भी टूट जायेंगे?

उत्तरः— मेरा ऐसा मानना है कि परिवारों में घुटन या टूटन में से एक चुनाव करना हो तो घुटन अधिक घातक है। यह ना समझी भरा कार्य है कि स्त्री और पुरुष अलग –अलग होने के लिए भी सरकार की अनुमति आवश्यक मानते हैं। परिवार का टूटना उतना घातक नहीं है जितना कि अलग–अलग रहकर सरकारी अनुमति की प्रतीक्षा करना। मुझे तो आश्चर्य होता है कि ऐसे मूर्खतापूर्ण कानून बनाने वाले अब तक समाज से लांछित क्यों नही हो रहे हैं। भविष्य में ऐसा समय आयेगा जब ऐसे–ऐसे असामाजिक तत्वों पर समाज टिप्पणी करना शुरु करेगा।

(15)आपने आधुनिक महिलाओं पर गम्भीर आरोप लगाये हैं। आपने ऐसी महिलाओं की संख्या भी नगण्य बतायी है?

उत्तरः— मैंने आधुनिक महिलाओं पर कुछ आरोप लगायें हैं। ऐसी महिलाएॅ, जिनकी कुल संख्या परम्परागत परिवारों की महिलाओं की अपेक्षा दो प्रतिशत से भी कम है, वे यदि महिला सशक्तिकरण अथवा परिवार के अनुशासन को तोड़ने में भगवान का दर्शन करती है, तो हम उनके ऐसे दर्शन में बाधक नहीं हैं। ऐसी महिलाएॅ खुद तो गलत दिशा में जा ही रही हैं बल्कि ऐसी गलत दिशा में जाने वाले पुरुषों के साथ मिलकर एक गिरोह बना चुकी हैं। लेकिन मेरा निवेदन है कि वे परम्परागत परिवारों को इस लाइन से भगवान दर्शन के लिए प्रोत्साहित न करें। मैं देख रहा हूॅ कि वर्तमान में परम्परागत परिवारों का संगठनात्मक ढॉचा टूट रहा है। मैं यह भी देख रहा हूॅ कि अनेक धर्मगुरु भी अपनी ना समझी के कारण ऐसे मार्ग को प्रोत्साहित कर रहें है।

(16)परिवार का मुखिया पुरुष ही क्यों, महिला क्यों नही ?

उत्तरः— अब तक चली आ रही पारिवारिक व्यवस्था में पुरुष प्रधानता चली आ रही है। यह एक विकृति है। इस विकृति से बहुत नुकसान हुआ है। इस विकृति को आधार बनाकर ही चंचल चित महिलाएँ अपना उद्देश्य पूरा करती हैं। भविष्य में परिवारों के मुखियॉ की नियुक्ति परिवार के सब लोग बैठकर सामूहिक निर्णय से करें। परिवार के संचालन में स्त्री पुरुष का भेदभाव न हो। सम्पत्ति में भी स्त्री –पुरुष का भेद न हो। परिवार प्रमुख, जो मुखियॉ से अलग होता है, और जो परिवार का सबसे वृद्ध होता है अर्थात् वह सबसे अधिक सम्मानित भी होता है, उस परिवार प्रमुख के बनने में भी स्त्री–पुरुष का भेद न हो। यदि हम ऐसा कर पाये तो चंचल चित महिलाएँ हमारी व्यवस्था को कमजोर नहीं कर पायेंगी।

(17)दीपिका पादुकोण ने सैकडों महिलाओं को साथ लेकर एक वीडियो तैयार किया, जो वायरल हो गया। इस वीडियो में उसने ये कहने की कोशिश की है कि ये शरीर उसका है, शादी से पहले सेक्स करे,ये उसका हक है,वो शादी के बाद दूसरे मर्द से सेक्स करे,ये उसका हक है,वो किसी महिला के साथ संबंध बनाए ये उसका हक है,या किसी के साथ कभी भी सेक्स ना करे,ये उसका हक है,वो बच्चा पैदा करे या ना करे, ये उसका हक है । महिलाओं के हकों को लेकर उसने और भी सारी बातें कही है। मजेदार बात ये है कि आज हम युवाओं की पीढ़ी रियल की दुनिया के बजाय रील यानि सिनेमाई परदे की दुनिया से ज्यादा प्रभावित होती है। लाजिमी है,इस वीडियो का असर भी लाखों युवतियों पर हुआ होगा। दूसरी तरफ आप व्यक्ति को परिवार का हिस्सा होने के लिए मजबूर करते हैं,मगर दीपिका हैं,कि आपकी बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं, भले ही उनके प्रेमी,रणबीर कपूर के रिश्ते या अपने पिता ऋषि कपूर से रिश्ते खराब ही क्यों न हो जायें। दूसरी ओर प्रसिद्ध लेखक सिद्धार्थ ने नवभारत चार अप्रैल में एक लेख लिखकर दीपिका पादुकोण की आलोचना करते हुए लिखा है कि उसका यह सोच भारतीय संस्कृति के खिलाफ है। यदि उससे प्रभावित होकर युवा लड़कियॉ माई च्वाइस का झंडा बुलंद करने लगें तो सोचिये कि यह समाज किस दिशा में जायेगा? महिलाओं को भोग की वस्तु मानना गलत है।

उत्तरः—मैं पहले से ही मानता हूँ कि सेक्स व्यक्ति का मौलिक अधिकार है, जिसमें उसकी सहमति से ही कोई अनुशासन निर्धारित किया जा सकता है। मैं तो यहॉ तक सोचता हूँ कि यदि भाई बहन या मॉ बेटा भी समाज के अनुशासन को न मानते हुए ऐसा करें,तो उन्हें दण्डित नहीं किया जा सकता। किन्तु मेरे विचार से समाज का अनुशासन तोड़ने वालो का समाज बहिष्कार कर सकता है। यदि व्यक्ति के कुछ मौलिक अधिकार हैं तो समाज के भी अपने कुछ मौलिक अधिकार हैं। आप समाज की अन्देखी करके चलेंगे तो समाज आपका बहिष्कार कर सकता है। यदि दूसरे के घर में आग लगे और आप आग बुझाने न जाये, तो हो सकता है कि आप के घर में आग लगने पर शेष समाज तमाशा देखता रहे। व्यक्ति और समाज के बीच सहजीवन की पहली पाठशाला परिवार है। किन्तु परिवार की संरचना भी सहमति से ही हो सकती है, किसी कानून से नहीं। यदि कोई व्यक्ति परिवार न बनावे तथा अकेला ही रहना चाहे तो आप उसे सरकारी या सामाजिक अधिकारों से या सुविधाओं से तो वंचित कर सकते है किन्तु कोई दण्ड नहीं दे सकते। इसी तरह सिद्धार्थ की सोच भी गलत है। संस्कृति सहमति से ही स्थापित हो सकती है, किसी दबाव कानून या नियम से नहीं। । सेक्स बलात्कार को छोड़कर अन्य किसी भी स्थिति में एक पक्षीय नहीं होता बल्कि द्विपक्षीय होता है। सेक्स एक मात्र ऐसा कार्य है जो दोनो पक्षों को समान संतुष्टि देता है।अर्थात् यह क्रिया दोनों पक्षों की समान आवश्यकता है। महिलाएँ भोग की वस्तु नहीं है यह कहना भी उतना ही घातक है जितना यह कहना कि ये पुरुषों के भोग की वस्तु हैं।

(18)सय्यद मुबीन जेहरा ने जनसत्ता 29 मार्च में पुरुष समाज में अकेली स्त्री शीर्षक से आधुनिक महिलाओं के पक्ष में एक लेख लिखा है। जिसका संक्षिप्त यह है कि पिछले सप्ताह से इस खबर को पढ़कर मैं बेचैन हूँ कि मिस्र में एक महिला को अपना घर चलाने के लिए वर्षों पुरुष बन कर रहना पड़ा। और वह भी तैंतालीस वर्ष तक।अब मिस्र में इस महिला को बहुत मान सम्मान दिया जा रहा है। लेकिन यह पूरी कहानी मिस्र के समाज की खोखली मानसिकता को भी दर्शाती है कि जहॉ एक अकेली महिला तभी अकेले जीवित रह सकती है और अपने परिवार का ध्यान रख सकती है,जब वह पुरुषों जैसी बन जाए। सवाल यह भी है कि जब महिला अपने सजने–संवरने के शौक छोड़ कर मर्द बन जाती होगी,तब उस पर क्या बीतती होगी? यह इस बात का सबूत भी है कि अगर कोई औरत कर्तव्य पालन की भावना के साथ जीना चाहे तो समाज के सभी ढकोसलों,रस्म रिवाजों को किनारें करते हुए वह अपना अलग रास्ता भी बना सकती है। मिस्र की यह गरीब औरत,जिसका नाम खबरों में सीधा जाबिर बताया गया है, चालीस साल से अधिक समय तक अपनी रोजी कमाने के लिए पुरुष के भेष में काम करती रही। उसकी आयु

अब पैंसठ वर्ष के करीब है।इक्कीस साल की उम्र में पति की मृत्यु के बाद उसने अपनी अकेली संतान की खातिर पुरुषो की तरह जीवन जीने का निर्णय किया था।ऐसा नहीं कि सीसा जाबिर ने पुरुष बन कर किसी कार्यालय में काम नही किया, जहॉ आराम से कागजों में सिर खपा कर वेतन मिल जाता,बल्कि उसने जो भी काम किया उसमें पुरुषो जैसी शक्ति और क्षमता की जरुरत पड़ती है। उसने कभी ईंट भट्ठों पर काम किया,कभी खेतों में मजदूरी की, कभी सिर पर मलबा ढोया और कभी सड़को पर लोगों के जूते पॉलिश किए। सवाल है कि घर चलाने और अपनी बेटी के लालन –पालन के लिए क्या वह यही सब काम एक महिला के नाते नहीं कर सकती थी? क्या जरुरत थी उसे तैंतालीस वर्ष तक पुरुषों जैसी बन कर रहने की।सबसे बड़ी समस्या तो निश्चित रुप से उसके लिए यही रही होगी कि कम उम्र में विधवा हो जाने के कारण मर्दो की बुरी नजर उसकी ओर हो सकती है। यह स्पष्ट है कि महिलाओं के लिए शिक्षा कितनी जरुरी है। आप पढ़ लिख कर नौकरी ही करें,जरुरी नहीं,मगर कठिन परिस्थितियों में शिक्षा सबसे बड़ा सहारा हो सकती है। सीसा जाबिर की हिम्मत और हौसले को सलाम करना होगा कि उसने उस मिस्री समाज में संघर्ष करते हुए पुरुषों की तरह जीवन बिताया,जहॉ आज भी महिलाओं को विभिन्न धार्मिक रस्मों के नाम पर दबाया जाता है। लेकिन प्रश्न है कि कोई समाज अगर महिला को मर्द बन कर काम करने पर स्वीकार लेता है,तो उसके स्त्री बनी रह कर काम करने पर उसे क्या शिकायत हो जाती है?न केवल मिस्र,बल्कि पूरी दुनिया के पुरुष समाज को इस सवाल का जबाब खोजना होगा।

उत्तरः– भारत में सय्यद मुबीन जेहरा जैसी आठ–दस महिलाओं को मैं जानता हूॅ जो ऐसी लेखिका हैं जिन्हें हर लेख में प्रायः आधुनिक महिलाओं की समस्याओं की ही याद आती है, न कि देश में फैली अन्य सैंकड़ो समस्याओं की। ऐसा लगता है जैसे कि उन्होंने एकमात्र महिला समस्या पर लिखने का ठेका उठा लिया हो। मिस्र में एक महिला ने पुरुष के वेश में 33 वर्ष बिता दिये तो मुझे समझ में नहीं आया कि ऐसी कौन सी विशेष बात हो गई। किरण वेदी सरीखी हजारों महिलाऍ पुरुष वेश में रहती है,और स्वयं को महिला कहती है। यदि उसने अपने वेश को पुरुष कह दिया या अपना नाम पुरुष रख लिया तो क्या हो गया।मुझे यह भी मालूम है कि हजारों पुरुष महिलाओं के वेश में रहकर रोजी रोटी कमाते हैं। एक आई पी एस पुलिस अधिकारी सरकारी डीयूटी पर रहते हुए भी पुरुष वेश छोड़कर महिला की पोषाक में रहते थे। मैं नहीं समझता कि मुबीन जेहरा को इस बात में कौन सी विशेषता दिखी। लेखिका स्वयं महिला वेश महिला नाम के आधार पर इतना जीवन आराम से बिता चुकी है। पता नहीं कि इस संबंध में उनका व्यक्तिगत अनुभव क्या है। वे लिख रही है कि महिला के सजने सवरने का समय छूट गया। मैं नहीं समझता कि यह लिखकर वे कितना महिलाओं के खिलाफ लिख रही है। मेरे विचार से पुरुष समाज में कोई स्त्री अकेली अलग तरह से रहना चाहती है तो यह उसकी स्वतंत्रता है। यदि वह महिला पुरुष के वेश में रहकर अपना महिला नाम भी रखती, तब भी कोई विलक्षण बात नहीं होती। आधुनिक महिलाओं को इस तरह बात का बतंगड़ बनाने की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए। हमारे जिले में हजारों महिलाऍ ईंट भट्ठो पर काम करती है या वे सब काम करती है जो मिस्र की उस महिला ने किये है और ऐसी महिलाओं में से अनेको अपनी इच्छा के विरुद्ध पुरुष आक्रमण से सुरक्षित रही है। मैं महिलाओं के पक्ष में ऐसी थोथी दलिलों के विरुद्ध हूॅ।

छत्तीसगढ़ सरकार का भूल सुधार

छत्तीसगढ़ सरकार ने राशन वितरण प्रणाली में सुधार करते हुए प्रति व्यक्ति सात किलो बहुत सस्ता अनाज देने की व्यवस्था की है। विदित हो कि अब तक छ0ग0 सरकार प्रत्येक राशन कार्ड पर पैंतीस किलो बहुत सस्ता अनाज दिया करती थी। इसका अर्थ था कि किसी परिवार में दो आदमी हों तब भी पैतीस किलो, और पन्द्रह आदमी हो तब भी पैंतीस किलो । इसका परिणाम हुआ कि अनेक लोग भिन्न –भिन्न तरीकों से एक ही परिवार में कई–कई राशन कार्ड बनवाने लगे। यह एक प्रकार से चालाकी को प्रोत्साहन था, जिसके परिणामस्वरुप चालाक व्यक्ति दो तीन राशन कार्ड बनवा कर अलग–अलग 35–35 किलो राशन प्राप्त कर लेता और शरीफ आदमी ठगा का ठगा रह जाता। सरकार के इस नये कदम से परिवारों की कृत्रिम टूटन भी रुकेगी और चालाकी का प्रोत्साहन भी रुकेगा। किसी भी दृष्टि से समीक्षा की जाये तो छ0ग0 सरकार का यह कदम उचित और भूल सुधार के रुप में दिखाई दे रहा है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कांग्रेस पार्टी इस अच्छे कदम का भी यह कहकर विरोध कर रही है कि इससे छोटे परिवारों को मिलने वाला अधिक राशन कम हो जायेगा। मैं समझता हूॅ कि कांग्रेस पार्टी का विरोध किसी भी तर्क के आधार पर आधार हीन है। सिर्फ एक ही तर्क इसके औचित्य को सिद्ध कर सकता है,और वह है कि भारतीय जनता पार्टी भी अपने कार्यकाल में जब विपक्ष में होती थी, तब ऐसे ही आधारहीन विरोध किया करती

थी। मैं समझता हूँ कि हम जैसे निष्पक्ष लोगों ने उस समय भारतीय जनता पार्टी के ऐसे आधारहीन विरोध की सदा आलोचना की है,और अब यदि कांग्रेस पार्टी ऐसा कर रही है तो उसके कदम की भी आलोचना होगी, और होनी चाहिए।

1दीप आहुजा,कांकेर,छत्तीसगढ़

प्रश्नः—दहेज प्रथा,बाल विवाह,कन्या भ्रूण हत्या आदि विषयों पर ज्ञानतत्व 1 से 15 सितम्बर में आपके तर्कों को अपना बना कर फेसबुक पर पोस्ट किया। मुझे पता था कि ये तर्क किसी को नहीं पचने वाले हैं क्योंकि ये लीक से हटकर हैं। कोई न कोई इनका विरोध करेगा। ऐसा हुआ भी।असहमत व्यक्ति को मैंने समझाया,कि राज्य अनावश्यक ही इन अस्तित्वहीन समस्याओं के समाधान में अपनी शक्ति जाया कर रहा है। मैंने उनको समझाया कि समाज में महिला पुरुष का एक प्राकृतिक अनुपात होता है। अनुपात बिगड़ने से किसी एक पक्ष का महत्व,सम्मान घटता बढ़ता रहता है। कन्या भ्रूण हत्या को लेकर मैने उन्हें बताया कि ये समस्या नहीं बल्कि समाधान है। महिलाओं की संख्या कम होने से उनका सम्मान बढ़ेगा,और तमाम तर्क जो मैं समझ पाया हूँ उनको समझाया। फिर भी वे असहमत रहे। वे सहमत हो यह जरुरी नही है पर उनका एक प्रश्न है जिसका उत्तर मैं भी जानना चाहता हूँ कि वैधानिक व्यवस्थाओं में समाज अथवा मानव का अहित कैसे हो सकता है?पुरुष का पशुत्व अथवा कमजोर का शोषण आपको समस्याओं का समाधान कैसे लग सकता है।जल्द उत्तर दें?

उत्तरः— प्राकृतिक व्यवस्था को सशक्त करना हम सबका कर्तव्य है चाहे हम व्यक्ति हों या सरकार हों या समाज। प्राकृतिक व्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप भी घातक होता है।व्यवस्था को सशक्त करना अलग बात है और कमजोर करना अलग बात। स्त्री—पुरुष का अनुपात जब किसी एक पक्ष में झुकता है और असंतुलन बढ़ जाता है तब प्रकृति स्वयं उसका समाधान करती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह समाधान प्राकृतिक तरीके से होता है। बल्कि इसका समाधान मॉग और पूर्ति के आधार पर स्वाभाविक तरीके से समाज कर लेता है। ऐसे समाधान में किसी सरकारी या वैधानिक हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि प्राकृतिक समस्याओं के समाधान में कानून हस्तक्षेप करेगा तो उससे लाभ कम और हानि ज्यादा होगी।

वैधानिक व्यवस्थाओं का उद्देश्य व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र है। जो वैधानिक व्यवस्था इतना दायित्व पूरा कर लेती है अथवा सफलता की ओर अग्रसर है तब वैधानिक व्यवस्था कुछ अतिरिक्त कार्य भी कर सकती है,जो उसका दायित्व नहीं है, स्वैच्छिक कर्तव्य मात्र है। भारत की शासकीय व्यवस्था पॉच प्रकार के अपराध रोकने में कमजोर सिद्ध हो रही है। उनमें है, चोरी, डकैती, और, लूट, बलात्कार, मिलावट, कमतौल, जालसाजी,धोखा—धड़ी, हिंसा, आतंक। जब इतने कुल पॉच प्रकार के कार्य ही उसके दायित्व है और उन्हें ही रोकने में सरकार सफल नहीं है तो उसे अपना दायित्व छोड़कर शोषण रोकना, जनसंख्या का अनुपात ठीक करना या भूखे को भोजन देना जैसे कार्य में अपने साधन और शक्ति क्यों लगानी चाहिए? यदि कोई सरकार बलात्कार रोकने में असफल दिख रही हो,और वैश्यावृत्ति रोकने में अपनी शक्ति लगा रही हो,और मेरे जैसे विचारक के समझाने पर भी न मान रही हो, तब स्पष्ट होता है कि ऐसी सरकार की नीयत में कहीं खोट है। सरकार यह क्यों नहीं स्पष्ट करती है कि महिला सशक्तिकरण के लिए महिला और पुरुष के बीच दूरी घटनी चाहिए या बढ़नी चाहिए,अथवा दूरी घटाने—बढ़ाने का निर्णय व्यक्ति या परिवार या समाज पर छोड़कर सरकार को अलग हो जाना चाहिए। आज तक मैं या आप भी नहीं समझ सके होंगे कि सरकार दूरी घटाना चाहती है या बढ़ाना चाहती है या दोनों कार्यो को एक साथ करके समाज को परेशान करना चाहती है। पुरुष का पशुत्व किसी भी दृष्टि से पूरी तरह रोकने की आवश्यकता है और वह पशुत्व सिर्फ और सिर्फ बलात्कार में ही दिखता है। मैं बलात्कार को रोकना सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ।कमजोर का शोषण असामाजिक कार्य है, अनैतिक कार्य है, अपराध नहीं। इसे अपराध कहना पूरी तरह गलत है। एक बुढ़िया जंगल में बैठी है और एक राजा प्यास से व्याकुल मरणासंन्न स्थिति में उससे एक गिलास पानी की याचना करता है जिसके बदले में बुढ़िया उस राजा से आधा राजपाट मॉग लेती है। शोषण हुआ या नहीं और हुआ तो किसका हुआ यह प्रश्न विचारणीय है। मेरे विचार में शोषण को रोकना समाज का कर्तव्य है सरकार का नहीं। यदि समाज अपना कर्तव्य न करे तब भी सरकार उस कार्य को नहीं कर सकती क्योंकि व्यवस्था के अनुसार सरकार जब अपना दायित्व पूरा करने में असफल रहती है तब समाज सरकार के काम में या तो सहयोग करता है या स्वयं उस कार्य को करने लग जाता है।स्पष्ट है कि समाज उपर है और सरकार समाज से नीचे।

2वैद्यराज आहुजा,भानुप्रतापपुर,जिला–कांकेर

प्रश्नः–आपने स्वाभिमान और अभिमान शब्द का प्रयोग किया,किन्तु दोनों का अन्तर नही बताया,जबकि आपको यह अन्तर भी बताना चाहिए था। अब आप बताने की कृपा करें?

उत्तरः–स्वाभिमान और अभिमान के बीच अन्तर करना बहुत कठिन कार्य है। जब राज्य समाज की सुरक्षा में सफल हो और अपना काम ठीक से कर रहा हो तब व्यक्ति को निरभिमानी होना चाहिए। उस समय स्वाभिमान की कोई उपयोगिता नहीं है। जब राज्य सुरक्षा देने में असफल हो तथा समाज को अपनी सुंरक्षा स्वयं करने की आवश्यकता हो तब व्यक्ति को स्वाभिमानी होना चाहिए। जब समाज कमजोर हो जावे और राज्य भी अपना कार्य छोड़कर अन्य कार्यो में लग जाए तब ऐसे कमजोर समाज का शोषण करने के उद्देश्य से व्यक्ति अभिमान का सहारा लेता है। व्यक्ति के अन्दर जितनी शक्ति है वह उस शक्ति का प्रर्दशन न करे तब व्यक्ति निरभिमानी माना जाता है। जब व्यक्ति अपनी या समाज की सुरक्षा के लिए अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है तब व्यक्ति स्वाभिमानी होता है।जब व्यक्ति समाज का शोषण करने के लिए अपनी वास्तविक शक्ति को कई गुना बढ़ा चढ़ाकर दिखाता है तब वह व्यक्ति अभिमानी माना जाता है। ऐसा अभिमान कभी–कभी लाभदायक भी हो सकता है,और यदि किसी स्वाभिमानी से पाला पड़ जाये तो घातक भी हो सकता है।किन्तु वर्तमान समय में निरभिमानी घाटे में है स्वाभिमानी भी आमतौर पर परेशान है और अभिमानी सफल दिख रहे है।